International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1139-1141

चंदेलकालीन शिक्षा व्यवस्था

निशान्त कुमार
शोध छात्र, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

चंदेलों के समय शिक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। वह शिक्षा को अत्यधिक महत्व देते थे। शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था बड़े ही सुव्यवस्थित एवं नियोजित ढंग से होती थी। विद्यार्थियों से ब्रह्मचर्य धर्म के पालन की उम्मीद की जाती थी। गुरुकुलों के माध्यम से विद्यार्थी गुरु के समीप रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। चंदेलकालीन शिक्षा से सम्बन्धित स्रोतों की मात्रा काफी सीमित हैं। यद्यपि यह अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन भारत में मौजूद शिक्षा पद्धति यहाँ भी रही होगी और इसी बात को दृष्टिगत् करते हुए समकालीन साहित्य से पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है।

प्राचीन कालीन समाज में उपनयन संस्कार से शिक्षा प्रारंभ होती थी। लेकिन मध्यकाल के पूर्व में उपनयन, शिक्षा के प्रारम्भ का बिन्दु नहीं रह गया था। अतः विद्यार्थी जीवन विभिन्न अवस्थाओं में प्रारम्भ हो जाता था। 'अपरार्क' व 'स्मृति– चन्द्रिका' से विद्यारम्भ की अवस्था पांच वर्ष ज्ञात होती है। डा. वी.पी. मजुमदार भी इसका समर्थन करते हैं।[1]

अलबरूनी का मत है कि, 'ब्रम्हचर्य आश्रम से ही विद्या–प्रारंभ हो जाती थी।[2] विद्या आरंभ करने के समय बालक गुरू की वन्दना करता था और उसके प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करता था।[3] अलबरूनी के मतानुसार विद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए काली तख्ती का प्रयोग किया जाता था। तख्ती पर लम्बाई की ओर से, बांये से दायं सफेद वस्तु (संभवतः खड़िया) से लिखा जाता था। विभिन्न प्रकार के दृश्य जो खजुराहों के मन्दिरों में उत्कीर्ण किए गये हैं, उसके आधार पर यह बताया जा सकता है कि उस समय दो प्रकार के विद्यालय थे। पहले छोटे बच्चों के लिए वर्तमान प्राथमिक पाठशाला की तरह तथा दूसरा उच्च शिक्षा केन्द्र की तरह।

लक्ष्मण मन्दिर के एक दृश्य में गुरू अपने बायें हाथ में एक बड़ी तख्ती व दांये हाथ में कुछ (चाक या पेन्सिल) लिए हुए फर्श पर बैठा है। एक छोटा बच्चा तख्ते को पीछे सहारा दिये हुये तख्ते के पीछे से झांककर देख रहा है कि गुरू जी क्या लिख रहे हैं? एक अन्य बच्चा गुरू के पीछे कंधे पर हाथ रखे हुए खड़ा है, तथा एक बच्चा चरण–स्पर्श करते हुये दिखाया गया है; दो बच्चे गुरू के पीछे बैठे हैं और एक उनके सामने खड़ा देख रहा है कि पीछे बच्चे क्या कर रहे हैं। कुल मिलाकर आठ बड़े और चार छोटे और दो बिल्कुल छोटे बच्चे अध्यापक को घरे हुए देख रहे हैं कि गुरू जी तख्ते पर क्या लिख रहे है।[4]

पार्श्वनाथ मंदिर के एक दृश्य में अध्यापक को बोर्ड पर लिखते हुये तथा उस बोर्ड को एक छोटे बच्चे द्वारा पकड़े हुये दिखलाया गया है।[5] उपर्युक्त दोनों प्रकार के दृश्य छोटे बच्चों के विद्यालय से संबंधित है।

प्राचीनकाल में ब्राम्हणों को ही वेद पढ़ाने का अधिकार था। लक्ष्मीधर इसकी पुष्टि करते है।[6] 'स्मृति–चन्द्रिका' व 'कृत्य कल्प तंरू' के अनुसार एक वेद का अध्ययन पर्याप्त था, जिसके पढ़ने में बारह–वर्ष का समय लगता था। वेदों के मंत्रों को मौखिक ही कंठस्थ कर लिया जाता था।[7] यद्यपि अपरार्क व 'मेघातिथि' ने मात्र कंठस्थ के आधार पर अध्ययन और अध्यापन की आलोचना की है। लोग वेदों के मंत्रों का अर्थ जाने बगैर ही उसे कण्ठस्थ कर लेते थे। अलबरूनी के कथन से भी इस कथन की पुष्टि हो जाती है।[8]

विद्यालय छोड़ते समय छात्र, अध्यापक द्वारा दी गयी सलाह या उपदेश ग्रहण करता था। उसे वर्तमान 'दिक्षान्त–भाषण' की तरह का कह सकते हैं। विद्यार्थी नये कपड़े, जूते, मोजे, आभूषण एवं छाता इत्यादि विद्यार्थी जीवन में धारण नहीं कर सकता था। छात्रों से गुरू द्वारा प्रदत्त ज्ञान की शिक्षा की परीक्षा शास्त्रार्थ आयोजित करके एवं सीखी हुयी कला की परीक्षा प्रायोगिक– परीक्षा के द्वारा ली जाती थी।[9]

इस समय के अध्ययन के विषयों की सूचना हमें 'प्रबोध–चन्द्रोदय' एवं तत्कालीन 'अभिलेखों' से प्राप्त होती है। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में वेद, उपवेद, अंग, पुराण, धर्मशास्त्र व इतिहास के उल्लेख मिलते हैं।[10] इनके अतिरिक्त सांख्य दर्शन, न्याय, वैशेषिक, महाभाष्य व मिमांसा आदि के नाम भी आते हैं। देववर्मन् के चरखारी अभिलेख (वि.सं. 1108) में वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, मिमांसा आदि के नाम मिलते हैं। देव–वर्मन् के ही नन्यौरा ताम्र–लेख में वेदांग के पूर्ण ज्ञाता अभिमन्यु का उल्लेख दिया गया है। धंग के खजुराहो–शिलालेख में उसके रचयिता राम का निर्देश सुक्ति–रचना दक्ष के रूप में हैं।11 उसका पिता बलभद्र साहित्य रत्नाकर श्रुति पारदर्शित और पितामह नन्दन कवि चक्रवर्तित् था। 'खजुराहो–अभिलेख' का रचयिता जज्जा गौड़ संस्कृत भाषा का विद्वान था।[12] शुद्ध संस्कृत भाषा में शिव की स्तुति परमार्दिदेव ने लिखी थी। कीर्तिवर्मन् के 'अजयगढ़–लेख' में जाजुक को कला, पुराण, आगम, धर्मशास्त्र तथा साहित्य में पारंगत कहा गया है। परमार्दिदेव के 'सेमरा–ताम्रपत्र' में 'भटाग्रहार' से आये नाना शाखाओं का अध्ययन करने वाले कई ब्राम्हणों का उल्लेख है। व्याकरण के अध्ययन का अत्यधिक प्रसार था। क्योंकि उसे सभी शास्त्रों के ज्ञान की कुंजी

माना जाता था। देश में उत्तम व्याकरणों के ज्ञाता की कमी नहीं थी। शिलालेखों में देछू वैयाकरणी का उल्लेख मिलता है। उसके ही पुत्र माधव ने यशोवर्मन के 'खजुराहो–शिलालेख' की रचना की थी। कविन्द्र 'देवधर' रचित 'वधरी–शिलालेख' में वर्णित है कि, 'लक्ष्मीधर समस्त विज्ञान रूपी जलाशय में निवास करने वाले राजहंस के समान था।' परमार्दिदेव के 'सेमरा–ताम्रपत्र' से वैद्य का उल्लेख मिलता है। जो कि 'आयुर्वेद' के प्रचलन को सिद्ध करता है। इसके अतिरिक्त 'अश्व वैद्य' के निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि पशु–चिकित्सा का भी समुचित विकास था। 'अश्व–वैद्य' का उल्लेख डा. मित्रा भी करते हैं।[13]

चन्देल कालीन निर्माणों को देखकर यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि इस समय निश्चित रूप से वास्तुकला, मुर्तिकला व स्थापत्य कला आदि की उच्च शिक्षा दी जाती थी। रसायन शास्त्र भी इस समय के अध्ययन का प्रमुख विषय था। अलबरूनी भी रसायन शास्त्र में प्रयोग होने वाली विधियों व मूल पदार्थों का जानने में असफल रहा था। खजुराहों के कुछ उत्कीर्ण दृश्यों से यह पता चलता है कि चन्देल काल में नृत्य व संगीत शिक्षा का भी प्रचलन था। 'प्रबोध–चन्द्रोदय' में भी संगीत का उल्लेख है।

कालिंजर के अभिलेख में कीर्तिवर्मन् के गुरू श्री मूर्ति का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट होता है कि, 'चन्द्रेल शासकों में राजगुरू की परम्परा मौजूद थी।[14] 'प्रबोध–चन्द्रदोदय' में गुरू के लिए 'अराध्यपाद' शब्द का प्रयोग हुआ है। कोई भी व्यक्ति गुरू के आसन पर बैठ नहीं सकता था। लक्ष्मण मंदिर में प्रदर्शित विद्यालय दृश्य गुरू–शिष्ज्ञय संबंध को प्रदर्शित करता है। इसमें अध्यापक पूर्ण मनोयाग से पढ़ा रहा है। गुरू के सम्मान की बात इस दृश्य से लगता है, जिसमें एक शिष्ट गुरू का चरण स्पर्श कर रहा है। गुरू के कंधों पर हाथ रखने के दृश्य से घरेलू वातावरण का अनुमान लगता है। गुरू भी शिष्य से अत्यधिक स्नेह रखता था एवां दोनों के आपसी संबंध पिता–पुत्र की तरह थे।

प्राचीनकाल में शिक्षा गुरूकुलों में दी जाती थी। गुरूकुल नगर के कोलाहल से दूर प्रकृति की गोद में स्थित होते थे। परन्तु पूर्व मध्यकाल तक जाते जाते गुरूकुलों का स्थान मठ–मंदिरों ने ग्रहण कर लिया। कुछ विद्वान शिक्षक अपने निवास स्थान में ही विद्या–दान करते थे। प्राचीन आश्रमों या गुरूकुलों की तरह कोई भी ब्रम्हचारी जंगल में नहीं रहता था। वैदिक आश्रमों की जगह मठ– मंदिर, विश्वविद्यालयीय शिक्षा केन्द्र हो गये थे। चन्देल शिलालेखों में अनेक 'अग्रहार' ग्रामों का उल्लेख मिलता है ऐसा अनुमान लगता है कि इस समय 'अग्रहार' ग्राम भी विद्या व शिक्षा के केन्द्र थे। अभिलेखों से इस समय की प्राथमिक शिक्षा पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता है। अतः प्राथमिक शिक्षा, मन्दिरों से संबंधित थी, एवं 'अग्रहार' स्थित विद्यालयों से सम्भपन्न होती थी।[16]

'प्रबोध–चन्द्रोदय' से प ता चलता है कि वटु (शिष्य) दम्भ (गुरू) के निवास स्थान (आश्रम) में रह रहा था। आश्रमों को अत्यधिक पवित्र माना जाता था, बिना पैर धोये आश्रमों में प्रवेश वर्जित था।

काशी इस समय का सर्वप्रमुख शिक्षा केन्द्र था। 'अलबरूनी' भी इस मत की पुष्टि करता है। शिक्षा के अन्य प्रमुख केन्द्रों में 'कुरूक्षेत्र' चक्र–तीर्थ व सालिग्राम के नाम उल्लेखनीय है।

शिक्षा की व्यवस्था राज्य की तरफ से होती थी या नहीं होती थी इसका कोई भी प्रमाण नहीं प्राप्त होती है, परन्तु इतना अवश्य पता चलता है कि विद्वानों को राज्य का संरक्षण अवश्य प्राप्त होता था एवं उन्हें उनकी विद्धता के कारण उच्च सरकारी पदों पर भी नियुक्ति की जाती थी।[17] धंग के 'प्रस्तर–अभिलेख' से विदित होता है कि वह दान–मान एवं पुरस्कारों से विद्वानों व कवियों की हर संभव सहायता करता था। इन विद्वानों से शिक्षा प्रसार का कार्य होता है। ब्राम्हणों को शिक्षण कार्य के लिए राजा स्वर्ण प्रदान करता था। धंग के उक्त शिलालेख से यह भी ज्ञात होता है कि शिक्षक–ब्राम्हणों के जीवन यापन के लिए भूमि, अन्न व गायें आदि भी प्रदान की जाती थी। शिष्यों द्वारा गुरू–दक्षिणा में धन भी प्रदान कया जाता था। ऊँची शिक्षा की व्यवस्था का यही आधार था।[18]

मंदिर इस समय शिक्षा व संस्कृति के केन्द्र थे। देश–विदेश से आये छात्रों को मन्दिरों में ही विद्यादान किया जाता था। राज्य की ओर से धनी व्यक्तियों द्वारा मन्दिरों को दान प्रदान होता था।

राजा द्वारा उपहार में गांव नगर, कपड़े, सोना और भूमि शिक्षकों को देकर सम्मानित किया जाता था। पवित्र ब्राम्हणों को अध्ययन, विभिन्न शाखाओं को सिखाने के लिये अग्रहरों के दान व कभी–कभी कर से मुक्त करके ग्राम प्रदान किये जाते थे। विद्यार्थियों को हमेशा ही हिन्दू समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। इन दृष्टिकोणों से चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड भी अछूता नहीं था।

अतः उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड में शिक्षा का माध्यम संस्कृत थी। उस समय नृत्य, संगीत, चित्रकला की शिक्षा भी समय की मांग के कारण दी जाती थी। उस समय रसायन शास्त्र, विज्ञान तथा दर्शन, ज्योतिष, वेद–वेदांग की भी शिक्षा दी जाती थी। अश्व वैद्य एवं आयुर्वेद के ज्ञान से स्पष्ट होता है कि उस युग में चिकित्सा शास्त्र की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। तत्कालीन समाज में गुरू–शिष्य बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। गुरू–शिष्य संबंध अत्यधिक मधुर पिता–पुत्र जैसे थे। विद्या मन्दिरों को बहुत ही पवित्रता की निगाहों से देखा जाता था। अतः यह कहा जाता सकता है कि चन्देल काल में शिक्षा बहुत ही उन्नतिशील एवं प्रतिष्ठा परक थी। अतः हम कह सकते है कि वर्तमान का समाज चन्देल कालीन शिक्षा, गुरू–शिष्य परम्पराओं तथा शिक्षा केन्द्रों से सीख प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मजुमदार, बी.पी. :– सोशियो इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, पृ0 149
2. जयशंकर मिश्र (अलबरूनी के आधार पर) :– ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 168
3. वही
4. दिक्षित, ए.के. :– चंदेलकालीन बुंदेलखण्ड का सामाजिक इतिहास (शोध प्रबंध), पृ0 72
5. वही
6. कृत्य कल्पतरू :– गृहस्थ, पृ0 252

7. स्मृतिचंद्रिका, भाग–1, पृ0 29, कृत्य कल्पतरू, ब्रह्मचारी, पृ0 263
8. जयशंकर मिश्र (अलबरूनी के आधार पर) :– ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 171
9. शर्मा, वी.एन. :– सो.क.हि.ना.इ., पृ0 40
10. वही
11. इवि. इण्डि. भाग–1, पृ0 146
12. वही
13. शिशिर कुमार मित्रा :– दि अर्ली रूलर्स आफ खजुराहो, पृ0 180
14. एस.के. सुल्लेरे :– अजयगढ़ व कालंजर की देव प्रतिमाएँ
15. उर्मिला अग्रवालः– खजुराहो स्कल्पचर्स एण्ड दियर सिग्नीफिकेंश, पृ0 112–113
16. वासुदेव उपाध्याय :– सो.रि. क.ना.इ. , पृ0 116
17. अयोध्या प्रसाद पाण्डेयः– चंदेल कालीन बुंदेलखण्ड का इतिहास, पृ0 186
18. दिक्षित, ए.के.:– चंदेलकालीन बुंदेलखण्ड का सामाजिक इतिहास, पृ0 78